क्या कार्यपालिका अपने ही मामलों में अभियोजक और न्यायधीश हो सकती है?

हाल ही में संसद ने जन विश्वास अधिनियम, 2022 कानून बनाया है। इसे 'व्यवसाय में सुगमता' से जुड़ा बताकर प्रचारित किया जा रहा है। इसका मुख्य उद्देश्य अनेक अपराधों में मिलने वाले कारावास के दंड़ को मौद्रिक दंडों में बदलना है। इससे अनेक प्रकार के मामलों में न्यायपालिका की शक्ति को नौकरशाही को हस्तांतरित किया जा रहा है।

उदाहरण के लिए, जन विश्वास अधिनियम पर्यावरण अधिनियम, 1986 और वायु (प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण) अधिनियम, 1981 में कारावास के दंड को 15 लाख रुपये तक के जुर्माने में बदल सकता है।

यहाँ बड़ा सवाल यह है कि क्या न्यायालयों की जगह नौकरशाही को तथ्यात्मक विवादों में न केवल फैसला देने, बल्कि दंड या जुर्माना लगाने का अधिकार दिया जा सकता है? क्या यह शक्ति के पृथक्करण की संवैधानिक योजना के विरूद्ध नहीं है?

शक्तियों का पृथक्करण -

- संविधान के अनुच्छेद 50 में राज्यों से नियत समय में ऐसा किए जाने की अपेक्षा की गई थी। लेकिन स्वतंत्रता के कई वर्षों बाद भी आपराधिक मजिस्ट्रेसी, कार्यपालिका के ही अधीन थी।

- अधिकांश राज्यों ने 1970 तक इसे प्रभावी बना लिया था। लेकिन तब भी कार्यपालिका तीन तरीकों से न्यायपालिका के अधिकारों पर कब्जा करने की कोशिश करती रही है।

1) विभिन्न मंत्रालयों ने न्यायपालिका द्वारा संभाले जाने वाले विभिन्न न्यायिक कार्यों के लिए स्वयं ही न्यायाधिकरण या ट्रिव्यूनल बनाने शुरू कर दिए। इनमें से अधिकांश में नौकरशाहों को टेक्निकल सदस्य की तरह नियुक्त होने का अवसर दिया जाता है।

2) केंद्र सरकार ने सेबी (सिक्योरिटीज एण्ड एक्सचेंज बोर्ड) और कॉम्पीटीशन कमीशन ऑफ इंडिया जैसे वैधानिक नियामक बनाने शुरू कर दिए, जिनके पास निजी क्षेत्र पर जुर्माना लगाने का अधिकार है। इन सबके प्रमुख नौकरशाह ही होते हैं।

3) केंद्र सरकार ने कई कानूनों में निर्णायक अधिकारियों की भूमिका निभाना शुरू कर दिया। धनशोधन निवारण अधिनियम 2002, सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2001 आदि इसके उदाहरण हैं।

जन विश्वास अधिनियम ऐसे ही कानूनों के आगे की एक कड़ी है।

विचार योग्य कुछ बिंदु -

- सरकार ने जो ट्रिब्यूनल बनाए हैं, उनकी संवैधानिकता को न्यायालयों में चुनौती दी जाती रही है।

- उच्चतम न्यायालय का स्पष्ट तर्क है कि न्यायिक कार्य केवल एक ऐसे स्वतंत्र न्यायिक प्राधिकारी को ही करना चाहिए, जो कार्यपालिका के नियंत्रण में नहीं है।

- जुर्माना लगाना एक न्यायिक कार्य है या नहीं (सिविल या आपराधिक मामलों में), इस पर कोई महत्वपूर्ण न्यायिक मिसाल नहीं मिलती है।

- सरकार अपने ही मामलों में अभियोजक और न्यायाधीश नहीं हो सकती। यही 'कानून के शासन' का सार है। इस आधार पर जन विश्वास अधिनियम की संवैधानिकता दांव पर है।

  यहाँ बड़ा मुद्दा यही है कि नौकरशाही या कार्यपालिका को न्यायपालिका के अधिकार क्षेत्र पर अतिक्रमण के लगातार प्रयासों से बचना चाहिए। लोकतंत्र के किसी भी स्तंभ की शक्तियों के हनन का प्रयास उचित नहीं कहा जा सकता।

'द हिंदू' में प्रकाशित प्रशांत रेड्डी के लेख पर आधारित। 7 अगस्त, 2023